वर्ष : 3, समग्रांक : 9, अप्रैल – जून 2013

पारस–परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

सृजन स्मरण

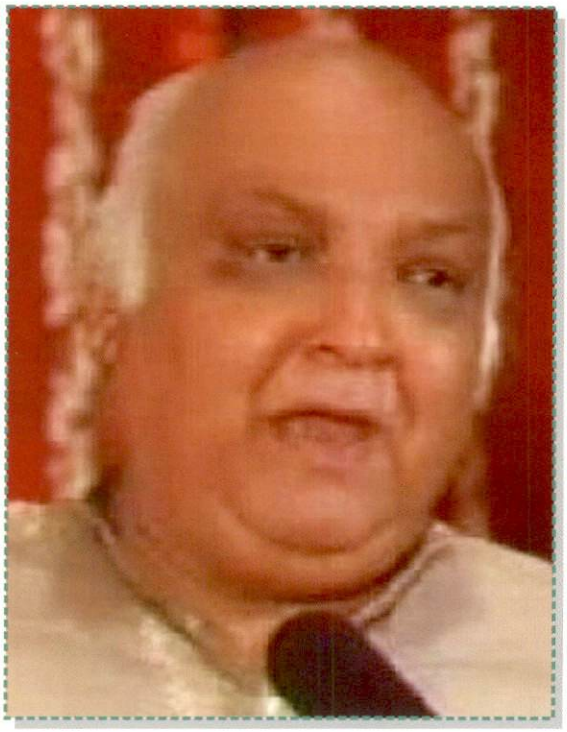

शैल चतुर्वेदी

(जन्म : 29 जून, 1936; निधन : 29 अक्टूबर, 2007)

व्यंग्य उस व्यंग्यकार को सुनाओ
जो अर्थ को अनर्थ में बदलने के लिए
वज़नदार लिफाफे की मांग करता रहा
और अपना उल्लू सीधा करने के लिए
व्यंग्य को विकलांग करता रहा

वर्ष : 3, समग्रांक : 9, अप्रैल – जून, 2013 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
रोम–रोम में कण–कण में	डॉ0 अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
अभिलाषा	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
कृषक	मैथिलीशरण गुप्त	6
मानुष जन्म महा दुखदाई	कमलानंद सिंह 'साहित्य सरोज'	7
अंजलि के फूल गिरे जाते हैं	माखन लाल चतुर्वेदी	8
सीखो	श्रीनाथ सिंह	9
ग्राम्य जीवन	मुकुटधर पाण्डेय	10
हुआ सवेरा..	कन्हैयालाल मत्त	11
समय के सारथी		
अरुन्धती	जगद्गुरू रामभद्राचार्य	12–13
कौन कहाँ रेहता है	गंगा प्रसाद विमल	14
उग आई नागफनी	धनंजय सिंह	15
...और तुम आओ	ज़ावेद अख्तर	16
तुम निश्चिन्त रहना	किशन सरोज	17
गीत हमारे, बिना तुम्हारे	डा॰ अशोक 'मधुप'	18–19
है चाहता बस मन तुम्हें	कृष्ण शलभ	20
कवि हूँ	मोहन द्विवेदी	21–22
माँग रहा लेकर कटोरा	डा॰ जीवन शुक्ल	23
नारी–स्वर		
एक लड़की की शिनाख्त	अलका सिन्हा	24
मैं अहिल्या नहीं बनूँगी	अंजू शर्मा	25
आओ, बैठो, मिलकर सुनें	कौशल्या गुप्ता	26
दर्द की महफिल	अल्पना नारायण	27
प्यार की सीमा रेखा	चित्रा सिंह	28
सुनो, साधो सुनो	निवेदिता	29
माँ, सुनाती है कहानी	अर्चना भैसारे	30
मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता	कविता गौड़	31
नवोदित रचनाकार		
इक्कीसवीं सदी के दोहे	बाँके बिहारी 'लाल'	32
ज़रा सा प्यार	वीरेन्द्र खरे 'अकेला'	33
अंतरिक्ष	अनूप सेठी	34
वह जीवन भी क्या जीवन है	सन्त कुमार यादव	35
न नई है, न पुरानी है	आदित्य चौधरी	36
मैं रास्ता कौन सा देखूँ	प्राणेश नागरी	37
बहुत दिनों बाद	अनुराग अन्वेषी	38
आज की आवाज़	नरेन्द्र सिंह	39
अंत में		
वो बता कैसे मिटें	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संरक्षक मंडल
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप
डॉ. सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो॰ : 9910912530

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार पाठक** द्वारा **आप्शन प्रिन्टोफास्ट पटपड़गंज इन्ड. एरिया तथा 257, गोलागंज, लखनऊ** से मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड़, लखनऊ से प्रकाशित ।

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय

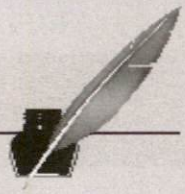

मित्रो, विश्व की अधिकतर मौजूदा शासन व्यवस्थाओं में सत्ता अपनी शक्ति सद्विचारों से नहीं, संख्या बल से प्राप्त कर रही है। ऐसी स्थति में यह स्वाभाविक है कि भीड़ की सोच ही सत्ता की सोच और उसकी प्रेरणा स्रोत बन जाये। जहां सत्ता भीड़ से शासित होती है वहां सत्ता सद्विचार और सदकर्म का अनुशासन नहीं रख पाती। सत्ता की सोच और उसके कृत्यों में भीड़ की मानसिकता और भीड़ का हुड़दंग देखने को मिलता है। यह एक श्रेष्ठ समाज के निर्माण में न केवल बाधक है अपितु मौजूदा समाज के लिए घातक भी है । प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य के मूल में सद्विचार ही हैं। सद्विचार क्या हैं इस बारें में निर्णय संख्या बल के आधार पर नहीं हो सकता। पूर्व में, मैंने कहीं ये पंक्तियाँ पढ़ी हैं:

''हद से तपे सो औलिया, अनहद तपे सो पीर
हद, अनहद दोऊ तपै, ता को नाम फक़ीर''

फ़कीर के जीवन से उपजते हैं – सद्विचार। फकीर जैसा जीवन जीने वाले रचनाकारों की कलम से निकलते हैं– सद्विचार। सद्विचार न तो राजभवन के कक्षों में बुलाई गई बैठकों में प्रस्तुत तर्कों से उपजते हैं और न ही उनका आधार संख्या बल होता है। त्याग के बिना सद्विचार असंभव हैं।

इतिहास में जो भी अच्छे शासक हुए हैं, वो त्याग की प्रतिमूर्ति थें ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उन्होंने अपनी शासन–व्यवस्थाओं में, निश्चित तौर पर सद्विचारों को बड़ा महत्त्व दिया था। उन्हें यह पता था कि एक मनीषी या फ़कीर की सोच में, और भीड़ की सोच में क्या अंतर होता है। उन्हें यह पता था कि फ़कीर अपने लिए कुछ नहीं मागता और उन्हें यह भी पता था कि भीड़ की ज़रूरतें कभी खत्म नहीं होतीं। उन्हें यह पता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है – फ़कीर पर, कि भीड़ पर। आज की हमारी शासन व्यवस्थाओं में एक बहुत ही अहम पक्ष को दरकिनार किया जा रहा है, और ऐसा दिखाया जा रहा है कि जैसे सब कुछ जनता-जनार्दन के लिए हो रहा है।

हम जिस भूभाग पर रहते हैं, जिस देश में रहते हैं, जिस पृथ्वी पर रहते हैं, जिस ग्रह और ब्रहमांड में रहते हैं क्या उस सबके प्रति शासकों के कर्तव्यों का निर्देशन, मात्र कुछ प्रतिशत वोट अर्थात तथाकथित बहुमत के आधार पर होगा। मौजूदा शासन व्यवस्थाओं के अंतर्गत–बहुत से ऐसे निर्जीव और सजीव हितधारक भीं हैं जिनके पास वोट का अधिकार नहीं है। उनके अधिकारों का क्या होगा ? उनके अधिकारों की रक्षा कौन करेगा ? क्या तथाकथित बहुमत के आधार पर चुनी गई सरकारें उनके हितों की रक्षा करेंगी ? नहीं। उनके अधिकारों की रक्षा मौजूदा सरकारों अथवा शासन व्यवस्थाओं से नहीं अपितु सद्विचारो से होगी।

सद्विचारों का यज्ञ निरंतर जारी है। फ़कीरो जैसी जीवन शैली और मनीषियों जैसे उच्च विचार रखने वाले हमारे रचनाकार आज भी अपनी रचनाओं के माध्यम से सद्विचारों के इस यज्ञ कुंड में निरंतर अपनी आहुतियां दे रहे हैं । उनकी इन आहुतियों से अग्नि कितनी अधिक प्रखरमान होगी और गंध किन–किन क्षेत्रो को सुवासयुक्त करते हुए हमारे अभ्यांतर के वातावरण को 'शुद्ध' और 'बैक्टीरिया' मुक्त करेगी, यह तो समय बतायेगा, लेकिन पारस–परस के इस अंक में इसी मंगल कामना के साथ रचनाओं का संकलन किया गया है। हम आशा करते हैं कि पारस–परस के पाठक इस अंक में संकलित सभी रचनाओं को डूब कर पढ़ेंगे और रचना से उद्भूत उस क्रमिक आस्वाद से अपने को जोड़ पायेंगे जो कि इनके रचनाकारों का अभीष्ट है।

पारस-परस के इस अंक में जिन रचनाकारों की रचनाओं का चयन किया गया है, हम उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

पाठकों की पाती

आदरणीय महोदय,

मैं विगत एक वर्ष से पारस–परस का नियमित पाठक हूँ। मुझे पारस–परस पत्रिका का हमेशा इंतज़ार रहता है क्योंकि यह पत्रिका बिना किसी प्रतिफल के सेवा भाव से प्रकाशित की जा रही है और इसीलिए इसमें प्रकाशित सभी कविताएं उच्च कोटि की होती हैं। उनमें कोई हल्कापन नहीं होता जैसा कि आजकल साहित्यिक पत्रिकाओं में देखने को मिलता है। इसमें न तो चुटकुले होते हैं और न ही हल्की–फुल्की बातें, बल्कि शुद्ध साहित्यिक रचनाएं होती हैं। इसीलिए मैं इस पत्रिका को बेहद पसंद करता हूं। कृपया मुझे बतायें कि इस पत्रिका को नये पाठक नियमित रूप से कैसे प्राप्त कर सकते हैं। क्या यह पत्रिका बाज़ार में उपलब्ध है या फिर इसे नियमित रूप से पाने का कोई क्या तरीका है। क्या मैं अपनी रचनाओं के माध्यम से इसमें योगदान कर सकता हूँ।

सुदक्षिणा

रांची, झारखण्ड

संपादक का उत्तर : इस पत्रिका के उच्च स्तर को ध्यान में रखकर रचनाकार अपनी रचनाएं प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं।

संपादक महोदय,

पारस–परस के जनवरी–मार्च 2013 के अंक में काफी कुछ परिवर्तन देखने को मिला। इसके कालजयी स्तम्भ में इस बार कुछ ऐसी रचनाएं देखीं जिन्हें मैंने स्कूल के दिनों में हिन्दी पाठ्यक्रम की पुस्तकों में पढ़ा था। रसखान और संत रविदास की रचनाएं पढी तो पुरानी यादें ताज़ा हो

गईं। कवियों के बारे में भी आप ने अच्छी जानकारी दी है। निश्चित रूप से इससे रचनाकार को सम्बल मिलता है। मैं ज़ोर देकर यह बात कहना चाहता हूं कि इस अंक में प्रकाशित सभी रचनाएं एक से एक अच्छी हैं और वे काव्य के मंतव्य को पूरा करती हैं।

अरुणेश त्रिवेदी

सीतापुर, उत्तर प्रदेश

सूचना

पारस–परस के पाठकों और योगदानकर्त्ताओं के लिए एक खुश खबरी यह है कि 'प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन' ने स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की स्मृति में एक 'प्रसून प्रोत्साहन पुरस्कार' शुरू करने का निर्णय लिया है। इस पुरस्कार की राशि 1100 रुपये नकद है। यह पुरस्कार प्रत्येक अंक में प्रकाशित किसी ऐसी मौलिक अप्रकाशित और उत्कृष्ट रचना को दिया जायेगा जिसमें काव्य का मर्म और धर्म समाहित हो और जो काव्य की कसौटी पर खरी उतरती हो। यदि एक से अधिक रचनाएं पुरस्कृत करने योग्य पायी गयीं तो राशि को तद्नुसार विभक्त कर दिया जायेगा।

पुरस्कार के बारे में अंतिम निर्णय प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन का होगा और इस बारे में प्रबंधन के निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती।

रचनाकार अपनी रचनाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस

418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट

अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम

गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

Email : paarasparas.lucknow@gmail.com / shivkumarbilgrami99@gmail.com

रोम-रोम में कण-कण में

– डा॰ अनिल कुमार पाठक

रोम–रोम में कण–कण में,
बाबू जी मेरे समाये हैं।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा
सीख यही ले आये हैं।।

नश्वर काया, झूठी माया,
आखिर मन भरमाया क्यूँ ?
मानुष तो पानी का बुल्ला,
फिर भी है बौराया क्यूँ ?
क्षण भंगुर जीवन के मद में
क्यूँ झूठे गदराये हैं।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा
सीख यही ले आये हैं ।।

लोभ मोह की ओढ़ चदरिया
आत्मस्वरूप छिपाया क्यूँ ?
रात दिवस लिप्सा में डूबे
जीवन व्यर्थ गँवाया क्यूँ ?
कहाँ–कहाँ से ढूँढ–ढूँढ कर
धन दौलत ले आये हैं।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा
सीख यही ले आये हैं ।।

गागर जब टूटेगी मद की,
कुछ भी हाथ न आयेगा।
डूबेगी कागद की नैया
अहं संग बह जायेगा
सद्चरित्र, सदगामी हैं जो,
वही अमर हो पाये हैं।।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा
सीख यही ले आये हैं ।।

❖❖❖

अभिलाषा

– पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

शोभित तारक की द्युति में ज्यों चन्द्र सुधा बरसाया करे।
मानसरोवर की लहरों पर हंस यथा मुस्काया करे।।
मलयानिल ज्यों मधुदान किये नवकीर्ति सदा बिखराया करे।
जीवन–ज्योति तुम्हारा प्रिये! सब भाँति हमें हरषाया करे।

जीवन शोभित हो जिससे तुम कीर्ति वही बिखराते रहो।
मधुमास को आस लगी जिससे उस सौरभ सा मदमाते रहो।
जगती ही रहे जगती जिससे, वह जीवन–ज्योति जगाते रहो।
उदयाचल में नित सूर्य बने कलियों को सदा ही खिलाते रहो।।

तुम तुंग हिमालय से फहरो, लहरों–लहरों पर वारिद बन।
मन के नभ आँगन में प्रिय हे, विहरो खगसा तुम जीवन घन।
बरसो सदा ही इस जीवन में तुम प्यासे पपीहों के जीवन बन।
यह सूखी धरा सी रहे न कहीं अरु मेरा कहीं यह भावुक मन।

विश्व की कोमलता में पले कोमल राग सुनाते रहो।
भक्त की भावुकता में रमे तुम स्नेह सदा ही दिखाते रहो।
अपना ही तुम्हें हैं बना जो चुके उनको भी सदा अपनाते रहो।
प्रेम–पयोधि के नाविक को मझधार से पार लगाते रहो।।

❖❖❖

मैथिलीशरण गुप्त

3 अगस्त, 1986 को झांसी के चिरगाँव में जन्में मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी काव्य के सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाकारों में से एक हैं। इन्होंने 'भारत–भारती' और 'साकेत' जैसी अमर कृतियों की रचना की है और इसीलिए इन्हें राष्ट्र कवि का सम्मान दिया गया है। आपको भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण अलंकार से सम्मानित किया गया है। आपका निधन 12 दिसम्बर, 1964 को हुआ। यहां पर हम 'कृषक' शीर्षक से इनकी एक कविता प्रस्तुत कर रहे हैं।

''हेमन्त में बहुदा घनों से पूर्ण रहता व्योम है
पावस निशाओं में यथा हँसता शरद का सोम है

हो जाये अच्छी भी फसल, पर लाभ कृषकों को कहाँ
खाते, खवाई, बीज ऋण से हैं रंगे रक्खे जहाँ

आता महाजन के यहाँ वह अन्न सारा अंत में
अधपेट खाकर फिर उन्हें है काँपना हेमंत में

बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा
है चल रहा सन सन पवन, तन से पसीना बह रहा

देखो कृषक शोषित, सुखाकर हल तथापि चला रहे
किस लोभ से इस आँच में, वे निज शरीर जला रहे

घनघोर वर्षा हो रही, है गगन गर्जन कर रहा
घर से निकलने को गरज कर, वज्र वर्जन कर रहा

तो भी कृषक मैदान में करते निरंतर काम हैं
किस लोभ से वे आज भी, लेते नहीं विश्राम हैं

बाहर निकलना मौत है, आधी अँधेरी रात है
है शीत कैसा पड़ रहा, औ' थरथराता गात है

तो भी कृषक ईंधन जलाकर, खेत पर हैं जागते
यह लाभ कैसा है, न जिसका मोह अब भी त्यागते

सम्प्रति कहाँ क्या हो रहा है, कुछ न उनको ज्ञान है
है वायु कैसी चल रही, इसका न कुछ भी ध्यान है

मानो भुवन से भिन्न उनका, दूसरा ही लोक है
शशि सूर्य हैं फिर भी कहीं, उनमें नहीं आलोक है

❖❖❖

कमलानंद सिंह 'साहित्य सरोज'

राजा कमलानंद सिंह का नाम द्विवेदी युगीन साहित्यकारों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वे ब्रजभाषा, मैथिली और खड़ी बोली में समान अधिकार से काव्य–रचना करते थे। उनकी रचना से प्रभावित होकर तत्कालीन 'कवि–समाज' ने उन्हें साहित्य सरोज की उपाधि प्रदान की थी। वह कई साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के संरक्षक भी थे इसलिए उन्हें 'द्वितीय भोज' के नाम से भी जाना जाता था। आपका जन्म 27 मई, 1876 में तथा निधन 1910 में हुआ। यहां पर हम उनके द्वारा रचित कुछ अनूठी और अनसुनी रचनाएं प्रस्तुत कर रहे हैं।

(1)

मानुष जन्म महा दुखदाई।
सुख नहिं पावत धनी रंक कोउ कोटिन किये उपाई।
रोग सदन यह तन मल पूरे छन में जात नसाई।।
आशा चक्र बँधे बिन मारग दिवस रैनि भरमाई।
पापिनि शापिनि चिन्ता व्यापे घेरि डसत नित आई।
विषै से सुखत देह और जग कन्टक सम दरसाई।।
मातु पिता दारा सुत दुहिता मित्र बन्धु गण भाई।
खान पान लागत नहिं नीको प्रिय अप्रिय भय जाई।।
हरि स्तुति के सारे एकही माया जाल छोड़ाई।
भजहु 'सरोज' नन्द नन्दन पद त्यागि कपट कुटिलाई।।

(2)

जो तरूता को फल दियो छाया करि विस्तार।
करत कुठाराघात तेहि ईन्धन बेचन हार।।
ईन्धन बेचन हार कुटिल अति नीच स्वार्थ पर।
ताहि कुठाराघात करत क्यों रे पापी नर।।
गीसम रवि सँ तपित रहयों जब परम दीन अरू।
आश्रय दियो 'सरोज' छाँह फल दे तब जो तरू।।

(3)

मेरो अति उपकार तुम कीन्हो मम ढिंग आय।
फल खायो सोयो दलन छन लौं मेरे छाय।।
छन लौं मेरे छाय आय श्रमदूर कियो है।
कवि सरोज भौ तृपित हमारो आज हियो है।।
हम पथ तरु तुम पथिक भयो विधुरन के बैरो।
जाहु आइंद हौ बहुरि राखिहौ सुमिरन मेरो।।

❖❖❖

माखन लाल चतुर्वेदी

माखन लाल चतुर्वेदी का जन्म 4 अप्रैल, 1889 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिला के बावई में हुआ था। यह 'कर्मवीर राष्ट्रीय' के संपादक थे और इन्होंने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ चढ कर भाग लिया। इसीलिए राष्ट्रीयता इनके काव्य का कलेवर है। इन्हें इनके कृतित्त्व के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार और पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया गया। इनका निधन 30 जनवरी, 1968 को हुआ।

अंजलि के फूल गिरे जाते हैं

अंजलि के फूल गिरे जाते हैं
आये आवेश फिरे जाते हैं।।

चरण ध्वनि पास–दूर कहीं नहीं
साधें, आराधनीय रही नहीं,
उठने, उठ पड़ने की बात रही,
साँसों की गति बे–अनुपात रही।।

बागों में पंखनियाँ झूल रहीं,
कुछ अपना, कुछ सपना भूल रहीं,
फूल–फूल धूल लिये मुँह बाँधे,
किसको अनुहार रहीं चुप साधे।।

दौड़ के विहार उठो अमित रंग,
तू ही 'श्रीरंग' कि मत कर विलम्ब,
बँधी–सी पलकें मुँह खोल उठीं,
कितना रोका कि मौन बोल उठीं,
आहों का रथ माना भारी है,
चाहों में क्षुद्रता कुँआरी है।।

आओ तुम अभिनव उल्लास भरें,
नेह भरें, ज्वार भरें, प्यास भरें,
अंजलि के फूल गिरे जाते हैं,
आये आवेश फिरे जाते हैं।।

❖❖❖

सीखो

– श्रीनाथ सिंह

श्रीनाथ सिंह इलाहाबाद के रहने वाले थे और इन्होंने कुछ समय तक सरस्वती पत्रिका का संपादन भी किया था।

फूलों से नित हँसना सीखो, भौंरों से नित गाना ।
तरु की झुकी डालियों से नित सीखो शीश झुकाना ।।

सीख हवा के झोंकों से लो कोमल भाव बहाना ।
दूध तथा पानी से सीखो मिलना और मिलाना ।।

सूरज की किरणों से सीखो जगना और जगाना ।
लता और पेड़ों से सीखो सबको गले लगाना ।।

मछली से सीखो स्वदेश के लिए तड़पकर मरना ।
पतझड़ के पेड़ों से सीखो दुख में धीरज धरना ।।

दीपक से सीखो जितना हो सके अँधेरा हरना ।
पृथ्वी से सीखो प्राणी की सच्ची सेवा करना ।।

जलधारा से सीखो आगे जीवन पथ में बढ़ना ।
और धूँए से सीखो हरदम ऊँचे ही पर चढ़ना ।।

❖❖❖

वो कल था साथ तो फिर आज ख्वाब सा क्यों हैं
बग़ैर उसके ये जीना अजाब सा क्यों हैं
हम एक साथ भी हैं और दूर–दूर भी हैं
हमारे दरमियाँ आख़िर हिज़ाब सा क्यों है

–ज़ैदी ज़ाफर रज़ा

मुकुटधर पाण्डेय

मुकुटधर पाण्डेय का जन्म 30 सितम्बर, 1895 को छत्तीसगढ के बिलासपुर जिला के एक छोटे से गाँव बालपुर में हुआ था। आपके पिता पं॰ चिंतामणि पाण्डेय और भाई पं॰ लोचन प्रसाद ख्याति प्राप्त साहित्यकार थे। हिन्दी पद्य के साथ–साथ हिन्दी गद्य के विकास में इनका अहम योगदान रहा है। आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी के विकास में योगदान के लिए इन्हें विभिन्न अलंकरण और सम्मान प्रदान किये गये। भारत सरकार ने 1976 में इन्हें 'पदम्श्री' सम्मान से सम्मानित किया। आपका निधन 6 नवम्बर, 1989 को हुआ।

ग्राम्य जीवन

छोट–छोटे भवन स्वच्छ अति दृष्ट मनोहर आते हैं–
रत्न जटित प्रासादों से भी बढ़कर शोभा पाते हैं
बटपीपल की शीतल छाया फैली कैसी है चहुँ ओर–
द्विजगण सुन्दर गान सुनाते नृत्य कहीं दिखलाते मोर।

शान्ति पूर्ण लघु ग्राम बड़ा सुखमय होता है भाई
देखो नगरों से भी बढ़कर इनकी शोभा अधिकाई
कपट द्वेष छलहीन यहाँ के रहने वाले चतुर किसान
दिवस बिताते हैं प्रफुलित चित, करते अतिथि द्विजों का मान।

बाग कहीं पर आस–पास में है फुलवारी कहीं अनूप
केले नारंगी के तरुगण दिखलाते हैं सुन्दर रूप
नूतन मीठे फल बागों से नित खाने को मिलते हैं।
देने को फुलेस–सा सौरभ पुष्प यहाँ नित खिलते हैं।

पास जलाशय के खेतों में ईख खड़ी लहराती है
हरी भरी यह फसल धान की कृषकों के मन भाती है
खेतों में आते ये देखो हिरणों के बच्चे चुपचाप–
यहाँ नहीं हैं छली शिकारी धरते सुख से पदचाप

कभी–कभी कृषकों के बालक उन्हें पकड़ने जाते हैं–
दौड़–दौड़ के थक–जाते वे कहाँ पकड़ में आते हैं।
बहता एक सुनिर्मल झरना कल–कल शब्द सुनाता है–
मानों कृषकों को उन्नति के लिए मार्ग बतलाता है

गोधन चरते कैसे सुन्दर गल घंटी बजती सुख मूल
चरवाहे फिरते हैं सुख से देखो ये तटनी के फूल
ग्राम्य जनों को लभ्य सदा हैं सब प्रकार सुख शांति अपार
झंझट हीन बिताते जीवन करते दान धर्म सुखसार

❖❖❖

कन्हैयालाल मत्त

कन्हैयालाल मत जी का जन्म 18 अगस्त, 1911 को टूंडला से चार किलोमीटर दूर ग्राम जारखी में हुआ था। जारखी उनका ननिहाल था। पिता पंडित घासीराम शर्मा हाथरस में थे। बचपन हाथरस में बीता और यहीं प्रारम्भिक शिक्षा हुई। इसके बाद पढ़ने के लिए आगरा आ गए। यहाँ रहकर शिक्षा पूरी की। विवाह के बाद बुलंदशहर आ गए। करीब सात–आठ महीने यहां रहे। दिल्ली में रक्षा मंत्रालय में लिपिक की नौकरी लग जाने के बाद गाजियाबाद आ गए और आजीवन यहीं रहे। हालांकि उनकी ख्याति बाल कवि के रूप में अधिक है, लेकिन उन्होंने प्रौढ़ साहित्य भी काफी मात्रा में लिखा। उनका देहांत 2 दिसम्बर, 2003 को हुआ। यहां उनका एक बहुत ही लोकप्रिय गीत प्रस्तुत है :–

हुआ सवेरा, गया अँधेरा,
सूरज रहा निकल
हाँ भई फक्कड़, लाल बुझक्कड़,
तू भी ढंग बदल।

बुरे काम तज, राम राम भज,
मत रट मरा–मरा
अपने–अपने, देख न सपने,
मन रख हरा–भरा।
अगर –मगर में, उलझ डगर में,
क्यों तू अड़ा–खड़ा
मस्त उछलता, रह तू चलता,
नाम कमा तगड़ा।

है बेमानी, सनक पुरानी,
उसको दूर भगा
नई कहानी, सुना जबानी,
पिछले गीत न गा।

❖❖❖

जगद्गुरू रामभद्राचार्य

विश्वविख्यात विद्वान, रचनाकार, प्रवचनकार, दार्शनिक और शिक्षाविद जगद्गरू रामभद्राचार्य का जन्म 14 जनवरी, 1950 को उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिला के शांडिखुर्द नामक ग्राम में हुआ। आप विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं। आपने अरून्धती महाकाव्य के रूप में अत्यन्त उच्च कोटि के काव्य की रचना की है। यहां पर हम उसी महाकाव्य से कुछ अंश प्रस्तुत रहे हैं।

मुनिवर्य ? तुम्हारी नित्य सिद्धि मैं
जन्म जन्म की हूँ दासी;
मैं नित्य प्रणयिनी गृहिणी हूँ
तुम बनो भले ही संन्यासी।
छाया में सदा एकरसता
रवि में होते हैं विपरिणाम;
राधिका नित्य एक रस होती
बहुरूपी होते सदा श्याम।।

मैं उस समुद्र की आभा हूँ
जिसमें न कभी हो परिवर्तन;
उस परमधाम की निष्ठा मैं
जिसमें न कभी पुनरावर्तन।
मैं उस नारद की वीणा हूँ
जो सदा एक–रस में बजती
मैं वह वशिष्ठ की अरून्धती
जो संयम से ही नित सजती।।

तुम पुरुष पुरातन निर्विकार
मैं सदा आपकी शुद्ध प्रकृति;
तुम चन्द्र चन्द्रिका मैं निर्मल
तुम दिनकर तो मैं पुण्य विभा;
तुम हो सौन्दर्य मंजु विग्रह
मैं हूँ छवि कलित दिव्य आभा।।

..... जारी

तुम दिव्य ज्योति के उद्‌बोधक,
मैं भी वह अदभुत जागृति हूँ,
तुम सद् विचार मृदु मानस के
मैं भी चिर अर्चित संस्कृति हूँ।
तुम हो नवयौवन के रहस्य
तो मैं उसकी हूँ मादकता
तुम साधन के हो मूर्त रूप
मैं सदा आपकी साधकता।।

तुम धर्म तो मैं हूँ विरति
और तुम अर्थ तथा मैं हूँ व्यापृति;
धर्मा विरूद्ध तुम काम सदा
मैं सतत सहचरी निर्मल रति।
तुम निराबाध मोक्ष स्वरूप
मैं निरूप्रद्रव हूँ भक्ति सती;
तुम ज्ञान और मैं बोध विधा
तुम मनन और मैं मंजुमती।।

तुम परम विलक्षण महाकाव्य
मैं कमन कल्पना की सुषमा;
तुम परम धर्ममय सजग शेष
मैं तुम पर धारित रम्य क्षमा।
तुम राम तथा मैं हूँ सीता
तुम भव मैं स्वयं भवानी हूँ;
तुम प्राणनाथ मैं हूँ पत्नी
कर्दम की सुता अयानी हूँ

❖❖❖

नई मुश्किल कोई दर–पेश हर मुश्किल से आगे है
सफ़र दीवानगी का इश्क की मंजिल से आगे है
–खुशबीर सिंह 'शाद'

कौन कहाँ रहता है

– गंगा प्रसाद 'विमल'

कौन कहां रहता है
घर मुझमें रहता है या मैं
घर में
कौन कहां रहता है
घर में घुसता हूँ तो
सिकुड़ जाता है घर
एक कुर्सी
या पलंग के एक कोने में
घर मेरी द्वष्टि में
स्मृति में तब कहीं नहीं रहता
वह रहता है मुझमें
मेरे अहंकार में
फूलता जाता है घर
जब मैं रहता हूँ बाहर
वह मेरी कल्पना से निकल
खुले में खड़ा हो जाता है
विराट सा –
फूलों के उपवन सा उदार –
मेरे मोह को
संवेदन में बदलता
और संवदेन को त्रास में
घर मुझमें रहता है अक्सर
मैं भी रहता हूँ उसमें
वह बांधे रहता है मुझे
अपने पाश में .....!

❖❖❖

संपर्क : 112, साउथ पार्क अपार्टमेंट
नई दिल्ली–110019

उग आई नागफनी

– धनंजय सिंह

हमने कलमें गुलाब की रोपी थीं
पर गमलों में उग आई नागफनी

जीवन ऐसे मोड़ों तक आ पहुँचा
आ जहाँ हृदय को सपने छोड़ गए
मरघट की सूनी पगडंडी तक ज्यों
कंधा दे शव को अपने छोड़ गए

सावनभादों के मेघों के जैसा–
मन भरभर आया, पीड़ा हुई घनी

आशा के सुमन महक तो जाते पर
मुस्कानों वाले भ्रम ने मार दिया
पतझर को तो बदनामी व्यर्थ मिली
हमको मादक मौसम ने मार दिया

पूजन से तो इनकार नहीं था पर
अपने घर की मंदिर से नहीं बनी

रंगोंगंधों में रहा नहाता पर–
अपनापन इस पर भी मजबूरी है
कीर्तन में चाहे जितना चिल्लाए
मन की ईश्वर से फिर भी दूरी है

सौगंधों में अनुबंध रहे बंधते
पर मन में कोई चुभती रही अनी

समझौतों के गुब्बारे बहुत उड़े
उड़ते ही सबकी डोरी छूट गई
विश्वास किसे क्या कहकर बहलाते
जब नींद लोरियाँ सुनकर टूट गई

संबंधों से हम जुड़े रहे यों ही
ज्यों जुड़ी वृक्ष से हो टूटी टहनी

❖❖❖

संपर्क : 1084, विवेकानंद नगर
गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

होश आए भी तो क्यों कर तेरे दीवाने को
एक जाता है तो दो आते हैं समझाने को
–हुशियार मेरठी

...और तुम आओ

– ज़ावेद अख्तर

ज़ावेद अख्तर मशहूर शायर होने के साथ–साथ हिन्दी सिनेमा के जाने–माने गीतकार और पटकथा लेखक हैं।

कभी यूँ भी तो हो
दरिया का साहिल हो
पूरे चाँद की रात हो
और तुम आओ

कभी यूँ भी तो हो
परियों की महफिल हो
कोई तुम्हारी बात हो
और तुम आओ

कभी यूँ भी तो हो
ये नर्म मुलायम ठंडी हवायें
जब घर से तुम्हारे गुजरें
तुम्हारी खुश्बू चुरायें
मेरे घर ले आयें

कभी यूँ भी तो हो
ये बादल ऐसा टूट के बरसे
मेरे दिल की तरह मिलने को
तुम्हारा दिल भी तरसे
तुम निकलो घर से

कभी यूँ भी तो हो
तनहाई हो, दिल हो
बूँदें हो, बरसात हो
और तुम आओ
कभी यूँ भी तो हो

❖❖❖

तुम निश्चिंत रहना

– किशन सरोज

कर दिए लो आज गंगा में प्रवाहित
सब तुम्हारे पत्र, सारे चित्र, तुम निश्चिंत रहना

धुंध डूबी घाटियों के इंद्रधनु तुम
छू गए नत भाल पर्वत हो गया मन
बूंद भर जल बन गया पूरा समंदर
पा तुम्हारा दुख तथागत हो गया मन
अश्रु जन्मा गीत कमलों से सुवासित
यह नदी होगी नहीं अपवित्र, तुम निश्चिंत रहना

दूर हूँ तुमसे न अब बातें उठें
मै स्वयं रंगीन दर्पण तोड़ आया
वह नगर, वे राजपथ, वे चौंक–गलियाँ
हाथ अंतिम बार सबको जोड़ आया
थे हमारे प्यार से जो–जो सुपरिचित
छोड़ आया वो पुराने मित्र, तुम निश्चिंत रहना

लो विसर्जन आज वासंती छुअन का
साथ बीने सीप–शंखों का विसर्जन
गुँथ न पाए कनुप्रिया के कुंडलों में
उन अभागे मोर पंखों का विसर्जन
उस कथा का जो न हो पाई प्रकाशित
मर चुका है एक–एक चरित्र, तुम निश्चिंत रहना

❖❖❖

संपर्क : आज़ाद पुरम छावनी,
अशरफखाँ रोड, बरेली

जो चल सको तो कोई ऐसी चाल चल जाना
मुझे गुमाँ भी न हो और तुम बदल जाना
–अहमद फराज़

गीत हमारे, बिना तुम्हारे

– डा॰ अशोक 'मधुप'

बस्ती, नगर, गली, घर तेरे, हर बहार ने की अगुआई,
लेकिन मेरे घर–आँगन में, पतझड़ था, मधुमास नहीं था।

पास मेरे तुम आयीं जैसे,
फूलों में खूशबू बस जाये।
तुमने मन को छुआ कि जैसे,
छुअन पुष्पगंधा बन जाये।

कँवल कपोलों पर मँडराते,
घुँघराले केशों के भौंरे,
लहरों सा इठलाता यौवन,
छल–छल–छल मधुघट छलकाये।

सम्मोहन से रूपजाल तक, इतने सारे जाल बिछाकर
कोसों दूर चली जाओगी, दिल को यह आभास नहीं था।

तुम आयीं तब लगा कि जैसे,
आया चाँद उतर घर मेरे।
पता नहीं कब प्रणय नगर में,
तुमने आकर डाले डेरे।

उर में आस मिलन की देकर,
दूर गई तट से धारा सी,
अब यादों के सावन में घन
सुधियों के रहते हैं घेरे।

इन्द्रधनुष सी बाँहों में निज, आलिंगन–अहसास नवल दे,
फिर तुम ऐसे ठुकराओगी, इतना तो विश्वास नहीं था।

.... जारी

याद तुम्हे भी होंगी वो सब,
सपनों की आज़ाद उड़ानें।
अंकपाश में बैठ के जब तुम,
बुनती थीं सब ताने–बाने।

लगता है अब जैसे कि वह,
साथ तुम्हारा ही सपना था,
या फिर वो सपने ही सारे,
हुये आजकल बहुत सयाने।

पतझड़ के झंझावातों के, खाये बहुत थपेड़े,
किस्मत में तेरे आँचल का, तिलभर भी आकाश नहीं था।

संत्रासों में कटी ज़िन्दगी,
जीवन भर भोगी पीड़ायें।
बिन माँझी सी नाव ज़िन्दगी,
अर्थहीन हो गयीं दिशायें।

तुमने गीत बसन्ती गाये,
मैनें, दर्द लिखा पतझड़ का,
बोल तुम्हारे छन्द हो गये,
भावों की बन गयीं ऋचायें।

गीत हमारे बिना तुम्हारे, इसीलिए रह गये अधूरे,
तुझमें थीं सारी उपमायें, मेरे ढिग अनुप्रास नहीं था।

❖❖❖

सम्पर्क : बी–10/125 डी, उदयगिरि अपार्टमेन्ट्स–2,
सेक्टर–34, नोएडा–201 307

है चाहता बस मन तुम्हें

— कृष्ण शलभ

शीतल पवन, गंधित भुवन
आनन्द का वातावरण
सब कुछ यहाँ बस तुम नहीं
है चाहता बस मन तुम्हें

शतदल खिले भौंरे जगे
मकरन्द फूलों से भरे
हर फूल पर तितली झुकी
बौछार चुम्बन की करे
सब ओर मादक अस्फुरण
सब कुछ यहाँ बस तुम नहीं
है चाहता बस मन तुम्हें

संझा हुई सपने जगे
बाती जगी दीपक जला
टूटे बदन घेरे मदन
है चक्र रतिरथ का चला
कितने गिनाऊँ उद्धरण
सब कुछ यहाँ बस तुम नहीं
है चाहता बस मन तुम्हें

नीलाभ जल की झील में
राका नहाती निर्वसन
सब देख कर मदहोश हैं
उन्मत चाँदी का बदन
रसरंग का है निर्झरण
सब कुछ यहाँ बस तुम नहीं
है चाहता बस मन तुम्हें

❖❖❖

सम्पर्क : सहारनपुर, उत्तर प्रदेश

कवि हूँ

– मोहन द्विवेदी

क्यों कहते हो चुल्लू को मैं, विस्तृत पारावर लिखूँ ?
चोर, उचक्के, डाकू को तुम, कहते हो सरकार लिखूँ ?

कवि हूँ चारण नहीं तुम्हारी, सत्ता के गुण गाऊँगा,
ऐसा दीप नहीं हूँ मैं जो, आँधी से घबराऊँगा।
हड्डी हूँ दधीचि की जिसमें, अब भी महाविनाश भरा,
भृगु ऋषि हूँ जो लात मारकर, नारायण से नहीं डरा।

स्वाभिमान–सम्मान त्यागकर, कायर का मनुहार लिखूँ ?
द्वेष–घृणा के आँगन को क्या, रिश्तों का संसार लिखूँ ?

मैं तो सतत् सत्य भारत हूँ, विचलित नही थपेड़ों से,
तुलना करते हो तुम मेरी, इन मिमियाती भेड़ों से।
भस्मासुर बन वही चले हैं, देखो हमें जलाने को,
शंकर बन विष घूँट पी लिया, हमने जिन्हें बचाने को।

जो नरमुंड पहन रखें हैं, क्या उनका मनुहार लिखूँ ?
कुछ टुकड़ों की लालच खातिर, अपने मन की हार लिखूँ ?

टूट नहीं सकता हूँ मैं इन, दुष्टों की दुत्कारों से,
इतना विवश नहीं मैं कर लूँ, समझौता गद्दारों से।
चन्द पाप के घट सम हैं ये, छलक उठेंगे कुछ पल में,
हरी घास की चाह लिए ये, धँस जायेगे दलदल में।

अपहरणों के धंधों को क्या, चाँदी का व्यापार लिखूँ ?
निष्ठा औ, ईमान त्यागकर कैसे भ्रष्टाचार लिखूँ ?

.... जारी

जिनके मन ही मरे हुए हैं, मुँह भी काले–काले हैं,
नोटों की गद्दी पर सोते, फिर भी धन के लाले हैं।
जो भयभीत सदा रहते हैं, कब कुर्सी छिन जायेगी,
अगर न्याय ने आँखें खोली, फाँसी भी लग जायेगी।

जंजीरों की जकड़न को क्या, पायल की झनकार लिखूँ ?
पतझर के बेबस मौसम को, सावन की बौछार लिखूँ ?

माला के भी फूल बदलकर, तुमने नोट बना डाले,
पीड़ित–शोषित जन को छलकर, अपने वोट बना डाले।
क्रान्ति किरण थी, नई सुबह थी, जिनके उच्च विचारों में,
पत्थर के बुत बने कैद वे, लिप्सा के चौबारों में।

नतमस्तक तानाशाही तुम, चाह रहे स्वीकार लिखूँ ?
एक हँसी की खातिर कितनी, आँखो में मैं खार लिखूँ ?

मीरा–तुलसी का वंशज मैं, सूर–कबीरा की थाती,
गीता–गौतम का अनुयायी, वीर शिवा की हूँ छाती।
निर्विकार हूँ सरस्वती का, वरद पुत्र कहलाता हूँ।
सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का मैं, गान हमेशा गाता हूँ,

सृजन जिया हूँ जीऊँगा मैं, क्यों बदलूँ संहार लिखूँ ?
जीवन है परहित अर्पित तो, वह गाथा सौ बार लिखूँ।

❖❖❖

संपर्क : डी–180, महेन्द्रा इन्क्लेव
(शास्त्रीनगर) गाजियाबाद–201002
फोन : 9350717901

माँग रहा लेकर कटोरा

– डॉ॰ जीवन शुक्ल

माँग रहा लेकर कटोरा
भटक गई किस्मत का सावधान छोरा।

ढकी मुँदी आँखों के कजरारे द्वार
इकतारी काया के कर का प्रस्तार
टूट नहीं पाता है अम्बर का धीर
धरती पी जाती है होंठों में पीर

उड़ती कनकैया का
धारदार डोरा
माँग रहा लेकर कटोरा
दूषित समाज का ग्रहन लगा छोरा।

असमय में कबीर के गीतों का साथ
पोंछ रहा कमलों से शबनम का माथ
माँग रहा कण कण में दुर्दिन का ईश
दाता की खैर कुशल सस्ती आशीष

माटी की गोद भली
संयम का बोरा
माँग रहा लेकर कटोरा
नियति के नवासे का नया नया छोरा।।

❖❖❖

संपर्क : खजुहा, फतेहपुर
उत्तर प्रदेश, भारत

एक लड़की की शिनाख्त

– अलका सिन्हा

अभी तो मैंने
रूप भी नही पाया था
मेरा आकार भी
नहीं गढ़ा गया था
स्पन्दनहीन मैं
महज माँस का एक लोथड़ा
नहीं, इतना भी नहीं
बस, लावा भर थी....
पर तुमने
पहचान लिया मुझे
आश्चर्य !
कि पहचानते ही तुमने
वार किया अचूक
फूट गया ज्वालामुखी
और बिलबिलाता हुआ
निकला आया लावा
थर्रा गई धरती
स्याह पड़ गया आसमान।

रूपहीन, आकारहीन,
अस्तित्वहीन मैं
अभी बस एक चिन्ह भर ही तो थी
जिसे समाप्त कर दिया तुमने।
सोचती हूं कितनी सशक्त है
मेरी पहचान
कि जिसे बनाने में
पूरी उम्र लगा देते हैं लोग।

जीवन पाने से भी पहले
मुझे हासिल है वह पहचान
अब आवश्यकता ही क्या है
और अधिक जीने की !

मुझे अफसोस नहीं
कि मेरी हत्या की गई !

❖❖❖

संपर्क : alka_writes@yahoo.com

दाग दुनिया ने दिए ज़ख्म ज़माने से मिले
हम को तोहफे ये तुम्हे दोस्त बनाने से मिले
हम तरसते ही, तरसते ही, तरसते ही रहे
वो फलाने से, फलाने से, फलाने से मिले

–क़ैफ भोपाली

मैं अहिल्या नहीं बनूँगी

– अंजू शर्मा

हाँ मेरा हृदय
आकर्षित है
उस दृष्टि के लिए,
जो उत्पन्न करती है
मेरे हृदय में
एक लुभावना कम्पन,

किन्तु
शापित नहीं होना है मुझे,
क्योंकि मैं नकारती हूँ
उस विवशता को
जहाँ सदियाँ गुजर जाती हैं
एक राम की प्रतीक्षा में,

इस बार मुझे सीखना है
फर्क
इन्द्र और गौतम की दृष्टि का
भिज्ञ हूँ मैं श्राप के दंश से
पाषाण से स्त्री बनने
की पीड़ा से,
लहूलुहान हुए अस्तित्व को–
सतर करने की प्रक्रिया से,

किसी दृष्टि में
सदानीरा सा बहता रस प्लावन
अदृश्य अनकहा नहीं है
मेरे लिए,
और मन जो भाग रहा है
बेलगाम घोड़े सा,
निहारता है उस
मृग मरीचिका को,
उसे थामती हूँ मैं

पर ये किसी हठी बालक सा
मांगता है चंद्रखिलोना,
क्यों नहीं मानता
कि किसी श्राप की कामना
नहीं है मुझे
संवेदनाओ के पैरहन के
कोने को,
गांठ लगा ली है संस्कारों की
मैं अहिल्या नहीं बनूंगी।

❖❖❖

हमें भी आ पड़ा है दोस्तों से काम कुछ यानी
हमारे दोस्तों के बेवफा होने का वक़्त आया
–हरिचन्द 'अख्तर'

आओ, बैठो, मिलकर सुनें

– कौशल्या गुप्ता

आओ, बैठो,
मिलकर सुनें–
इस गगन झरती नीलिमा का
नील वर्णी राग।

वर्णछवि–से टूटती
और बिखर अपने में सिमटती
रश्मि की **शावत्** प्रभाती,
सान्ध्यवर्णी–राग।

पल्लवों का विलग हो
झरना, सहमना;
झरन के समवेत स्वर में
करुणवैभव राग।

बीज अँकुर का उमगना
गगन लख,
फिर ललित कोमल गात
किसलय का कुतूहल;
कोंपल, किसलय की छवि से
पर्वफल की परिणति तक–
पथक्रमण–की सतत गति
पदचाप स्वर–
झरता चिरन्तन
सृजन का आलाप

देवघर की दीपलौ–
देवछाया से लहरती,
आरती के थाल की
नैवेद्य चक्रित तान।

❖❖❖

दर्द की महफिल

– अल्पना नारायण

दर्द की महफिल सजाना चाहती हूँ
साज़ छेड़ो, गुनगुनाना चाहती हूँ

यूँ ही रस्मन पूछ बैठी हालचाल–
वो ये समझा दिल दुखाना चाहती हूँ

उम्र भर का साथ तो मुमकिन नहीं है
साथ पल दो पल बिताना चाहती हूँ

युद्ध में जब हो गया बेटा 'शहीद'
माँ पे क्या गुज़री बताना चाहती हूँ

आग नफरत की बुझाने के लिए मैं
प्रेम की गंगा बहाना चाहती हूँ

(2)

मैं आँसुओं को चुराता चला गया
बेफिक्र मुझको और रुलाता चला गया

मेरी वफा का रंग नज़र आएगा कैसे
मैं बेवफा हूँ दाग लगाता चला गया

बदलेगा मेरा वक़्त भी ऐ दोस्त एक दिन
यह ऐतबार दिल को कराता चला गया

मिटता रहा हवाओं के संग आ के बारबार–
जो अक्स रेत पर मैं बनाता चला गया

हमदर्द उसे जब से हमने बना लिया
वह दर्द मेरे नाम लिखाता चला गया

❖❖❖

संपर्क : 4/20, एमएसीटी क्वाटर्स
गर्ल्स हॉस्टल के सामने,
एमएसीटी, भोपाल, म॰ प्र॰

प्यार की सीमा रेखा

– चित्रा सिंह

प्यार की सीमा रेखा
तय करनी होगी

कितनी गहराई तक
डुबोना है ख़ुद को

कहाँ से वापस
आ जाना होगा लौटकर
किनारों पर।

अपने ख़्वाबों को सजाकर
दुनिया की हाट में
जिस दिन सीख जाऊँगी
बोली लगवाना
उसी दिन से मिल जाए
शायद मुझे निजात
पर तब कहाँ बचेगा मेरा घर ?
मैं भी कहाँ बच पाऊँगा शायद।...

तुम्हारा आना, आकर
मेरी जिन्दगी के केनवास पर
खिंची आड़ी तिरछी–
लकीरों को जोड़ना
सलीके से,

भरना उनमें रंग
जिससे बनी है खूबसूरत – सी तस्वीर
तस्वीर जिसकी .....
शक्ल बिल्कुल मेरी सी है

और वो रंग तुम्हारे मैंने
भर लिए हैं, अपनी माँग में।

❖❖❖

क्या आए तुम जो आए घड़ी दो घड़ी के बाद
सीने में होगी साँस अड़ी घड़ी दो घड़ी के बाद
तू दो घड़ी का वादा न कर देख जल्द आ
आने में होगी देर बड़ी दो घड़ी के बाद

–ज़ौक

सुनो, साधो सुनो

– निवेदिता

सुनो, साधो सुनो,
जो सच तुमने दुनिया के सामने रखा
जो इतिहास तुमने रचा
और कहा–यही है स्त्रियों का सच
अपने दिल पर हाथ रख कर कहना
कितने झूठ गढ़े हैं तुमने
कितनी बेड़ियाँ बनाई तुमने

तुमने जो कहा
वह स्त्रियों की गाथा नहीं थी
वहाँ द्रोपदी का चीरहरण था–
गांधारी की आँखों पर पट्टी थी
वेदना को धर्म, और वंचना को त्याग कहा तुमने

साधो! इस बार स्त्रियाँ अपनी गाथा ख़ुद लिखेंगी
यह सच है कि उसने अभी–अभी अक्षर पहचाना है–
फिर भी, टेढ़ी मेढ़ी लकीरों से रच रही हैं नया इतिहास
अनगढ़ हाथों से नए शब्द गढ़े जा रहे हैं
रची जा रही है एक नई दुनिया
जहाँ चीरहरण होने पर वह–
भरी सभा में प्रार्थना नहीं करेगी
नहीं मागेंगी देवताओं से लज्जा की भीख
वह टूटती बिखरती ख़ुद खड़ी होगी–
उसके भीतर एक आग छुपी है साधो

वह दंतकथाओं की फिनिक्स पक्षी की तरह
अपनी ही राख से उठ खड़ी होगी

❖❖❖

संपर्क : पटना, बिहार

माँ, सुनाती है कहानी

– अर्चना भैसारे

माँ सुनाती है कहानी
जो सुन रखी थी उसने
अपनी माँ से
और उसकी माँ ने
अपनी माँ से

सोचती हूँ
मैं भी सुनाऊंगी कहानी
अपने बच्चों को
इस तरह
चलती रहेगी कहानी पीढ़ी–दर–पीढ़ी

पर देखती हूँ कि
घटने लगी है तुलसी चौबारे की तरह कहानी

और उठने लगे हैं
आंगन से
कहानियाँ सुनते सुनते लोग।

और जब कभी
मैली हो जाती रुह

तब याद आती
तुम्हारे मन में बहते
मीठे झरने की

कि जिसमें डूबकर
साफ करती हूँ आत्मा अपनी।

❖❖❖

संपर्क : अन्नापुरा, हरदा
मध्य प्रदेश

मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता

– कविता गौड़

मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता
क्योंकि उसमें तो त्याग और परोपकार
का भाव नहीं होता

मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता
क्योंकि उसमें दूसरों द्वारा पहुँचाए कष्ट
सहने की ताकत नहीं होती

मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता
क्योंकि वह अपनी जड़े खोदने वाले
को कभी शरण नहीं देता

मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता
क्योंकि वह करता नहीं क्षमा
याद रखता है और बदला लेता है

मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता
क्योंकि अपना सब कुछ मनुष्यों के
लिए अर्पण करने वाले वृक्ष को भी
मनुष्य नहीं बख़्शता
काट डालता है
क्योंकि वह जलता है वृक्ष की नम्रता से
वृक्ष की कर्तव्यनिष्ठा से–
मनुष्य कभी वृक्ष नहीं बन सकता

❖❖❖

संपर्क : रायपुर, छत्तीसगढ़

इक्कीसवीं सदी के दोहे

– बाँके बिहारी 'लाल'

घर में उगा बबूल का, चलता फिरता पेड़।
मैं सिकुड़ा बचता फिरूँ, फिर भी हो मुठभेड़।।

नहीं जरूरत बांट तू, लड्डू भर–भर थाल।
शरबत में डूबे हुए, शब्द कान में डाल।।

जब बच्चे भटके हुए, नहीं करें सम्मान।
यह दस्तक बैराग की, तू हरि प्रेरित जान।।

लड़का लड़की साथियों, चुम्बक के दो छोर।
पास अत्यधिक आ गए, चुम्बकत्व घनघोर।।

मंहगा चूल्हा जल रहा, लकड़ी जन–जन–पीर।
राजनीति की पक रही, धीमी धीमी खीर।।

मिल तो गई स्वतंत्रता, एक हुआ अंधेर।
बधिकों के हाथों पड़ी, जनता–दीन–बटेर।।

जन प्रतिनिधि आकंठ सब, डूबे स्वारथ ताल।
कार्यपालिका भुस भरे, खींच–खींच कर खाल।।

कल–पुर्जों का काल यह, यंत्र हुए गतिमान।
चलता पुर्जा हो गया, अब देखो इंसान।।

देवी धारें बदन पै, कपड़े इतने तंग।
वस्त्र फाड़ मानो सभी, दौड़ पड़ेंगे अंग।।

❖❖❖

संपर्क : इंदिरापुरम,
गाजियाबाद
मो॰ : 9311170945

ज़रा सा प्यार

– वीरेन्द्र खरे 'अकेला'

हर तरफ ही तकरार
ढूंढ़ कर लाओ जरा सा प्यार

सब्र की सीमा निरन्तर संकुचन पर है
अब त्वरित आवेश पूरे बांकपन पर है
हैं बिखरते–टूटते परिवार
ढूंढ़ कर लाओ ज़रा सा प्यार

बोल मीठे जप रहे पाखंड की माला
कटु वचन का फैलता जाता मकड़जाला
चल पड़ा किस ओर यह संसार
ढूंढ़ कर लाओ ज़रा सा प्यार

खो गया सद्भाव उन्नति के उपायों में
रह गया क्या भेद अपनों में, परायों में
स्वार्थों पर मित्रता का भार
ढूंढ़ कर लाओ ज़रा सा प्यार

बचपन ने स्नेह की आकांक्षा खोई
क्यों उचित सम्मान के हित प्रौढ़ता रोई
ध्वंस के दृढ़ हो रहे आधार
ढूंढ़ कर लाओ ज़रा सा प्यार

इस तरह कलुषित किये अंतःकरण किसने
कर लिया संवेदनाओं का हरण किसने
है बड़ी घातक समय की मार
ढूंढ़ कर लाओ ज़रा सा प्यार

❖❖❖

संपर्क : किशनगढ़, छतरपुर,
मध्यप्रदेश

अंतरिक्ष

– अनूप सेठी

एक अंतरिक्ष है
सब उसमें हैं

बना लें अगर हम भी अपना एक अंतरिक्ष
सब हममें हो जाएं
शुरु हों समय से पहले
फैल जाएं समय के परे

नीली स्फटिक पृथ्वी हों हम
अग्निपिंड सूर्य हो एक
झूम झूम घूमें अनवरत
टिकें रहें शून्य में भी

एक चांद हो रातों में उजास भरने वाला
बलैंया लेकर घूमे कलाएं दरसाता
किंवदंतियों सा दिखा करे छिपा करे
तयशुदा दूरी हो पर हमारा हो
इस भरोसे नींद आए

अंतरिक्ष होगा पूरा
अनगिनत जब तारे गढ़ेंगे हम
दीपदिप अंधकार में ढूंढा करेंगे
कौन है जो झिलमिलाता है
कुछ कहता है बुलाता है

किसी के शायद सितारे हो जाएं हम भी
अनगिनत लोगों के साथ
रहते हैं हम बिसर जाते हैं

जब बनाएंगे अंतरिक्ष
कोई बिसरेगा न बिछड़ेगा
अनंत की छाती पर टंकेगा
टिमटिमाएगा
इतने पास होगा हमारे

हम इतने प्यारे हो जाएंगे
कोई सितारा जगाएगा
कोई सुलाएगा
ब्रह्मांड में रहेंगे हम अनंत

❖❖❖

वह जीवन भी क्या जीवन है

– सन्त कुमार यादव

वह जीवन भी क्या जीवन है,
विपदा जिसका शृंगार नहीं।
जो रहा हमेशा फूलों में,
काँटों से जिसको प्यार नहीं।

वह जीवन भी क्या जीवन है,
जो करता पर–उपकार नहीं।
जो पूज रहा धन–दौलत को,
मानव से जिसको प्यार नहीं।

वह जीवन भी क्या जीवन है,
ईश्वर जिसका आधार नहीं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह,
के सिवा किसी से प्यार नहीं।

वह जीवन ही तो जीवन है,
जिसमें कोई अपकार नहीं।
जो सदा सभी का हित चाहे,
पाता है सब का प्यार वही।

❖❖❖

संपर्क : 30/23, लक्ष्मी गार्डन
गुड़गाँव, हरियाणा

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित/मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार/कॉपीराइट धारक से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक/अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **प्रसून–प्रतिष्ठान** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।

न नई है, न पुरानी है

– आदित्य चौधरी

न नई है न पुरानी है
सच तो नहीं
जाहिर है, कहानी है
एक जोड़ा हंस हंसिनी का
तैरता आसमान में
तभी हंसिनी को दिखा
एक उल्लू कहीं वीरान में

हंसिनी, हंस से बोली–
"कैसा अभागा मनहूस जन्म है उल्लू का
जहाँ बैठा
वहीं वीरान कर देता है
क्या उल्लू भी किसी को खुशी देता है ?"

तेज कान थे उल्लू के भी
सुन लिया और बोला–
"अरे सुनो! उड़ने वालो !
शाम घिर आई
ऐसी भी क्या जल्दी !
यहीं रुक लो भाई"
ऐसी आवाज सुन उल्लू की–
उतर गए हंस–हंसिनी
ख़ातिर की उल्लू ने
दोनो सो गए वहीं
सूरज निकला सुबह

चलने लगे दोनों तो...
उल्लू ने हंसिनी को पकड़ लिया
"पागल है क्या ?
मेरी हंसिनी को कहाँ लिए जाता है ?
रात का मेहमान क्या बना ?
बीवी को ही भगाता है ?"

हंस को काटो तो ख़ून नहीं
झगड़ा बढ़ा
तो फिर पास के गाँव से नेता आए
अब उल्लू से झगड़ा करके
कौन अपना घर उजड़वाए !
उल्लू का क्या भरोसा ?
किसी नेता की छत पर ही बैठ जाए

तो फ़ैसला ये हुआ
कि हंसिनी पत्नी उल्लू की है
और हंस तो बस उल्लू ही है
नेता चले गए
बेचारा हंस भी चलने का हुआ
मगर उल्लू ने उसे रोका
"हंस ! अपनी हंसिनी को तो ले जा
मगर इतना तो बता
कि उजाड़ कौन करवाता है ?
उल्लू या नेता ?"

❖❖❖

मैं रास्ता कौन सा देखूँ

– प्राणेश नागरी

(1)

किसी गुमनाम मंजिल का मैं इक भटका मुसाफिर हूँ
मुझे बस यह बता दे तू, मैं रास्ता कौन सा देखूँ।
तुम अपने आप को आईनाख़ाने में ज़रा रख दो
मैं समझूं तो भला मैं कौन सा चेहरा तेरा देखूँ।
यह सब हमशक्ल हैं मेरे यह मेरे हमसफर भी हैं
मैं अपने कौन से हिस्से को अब कातिल बना देखूं।
कोई आवाज कोई कारवाँ हमराह तो हो ले
जहां देखूँ वहां खुद को अकेला ही खड़ा देखूँ।

(2)

अलसाई धूप के आँगन में सब अक्स बिखरते जायेंगे
कुछ पत्ते छन–छन बरसेंगे कुछ फूल निखरते जायेंगे।
आकाश में तारों की गिनती पलकों की सरहद कर लेगी
मैं रात से साजिश कर लूँगा लम्हात संवरते जोयेंगे।
होंठों का बयाँ हाथों की जलन अब रहने दे, सब रहने दे
आँखों की जुबां से बात समझ हालात बदलते जायेंगे।
कुछ दूर लरजता हाथ पकड़ कुछ देर मुझे बस और समझ
इस पार मेरे संग और ज़रा, उस पार अकेले जायेंगे।
कुछ छूटा है कुछ छोड़ा है अब जीतूँ क्या और हारूं क्या
मन, मनमानी में रमा रहे हम रंग समेटे जायेंगे।

❖❖❖

बहुत दिनों बाद

– अनुराग अन्वेषी

बहुत दिनों बाद
उठा है कोई शोर
कि आदमी भूल जाना चाहता है
अपनी वर्जनाओं को
जीतना चाहता है
नियति की लड़ाई
इसलिए, ओ कृष्ण
पूछता हूँ सच बताना
कब तक मोहिनी मुस्कान से
छलते रहोगे तुम ?
कब तक युधिष्ठिर
शब्दजाल रचते रहेंगे ?
अब कोई भीष्म
क्यों पैदा नहीं होता ?
क्यों नहीं बन पाता
कोई सुदामा
अब तुम्हारा मित्र ?
क्यों काट लिए जाते हैं
एकलव्य के अँगूठे ?
कभी जाति के नाम पर
तो कभी दान के नाम पर
कोई कर्ण
छला जाता है बराबार–?
आज भी उसकी शक्ति का
अवमूल्यन होता रहा है
पर तय है कि
सत्ता के लोभ में
जातीय संघर्ष को आँच देना
धर्म की परिभाषा नहीं बन सकता।

सचमुच कृष्ण,
बेहद मुश्किल है अब चुप रहना।
माना,
कि अपने देश में
घृतराष्ट्रों की परंपरा रही है,
दुर्योधनों की कोई कमी नहीं।
फिर भी
इस बेमियादी यातना का अंत
कहीं तो होगा ?

सोचो कृष्ण,
जब सत्ता पाने के लिए ही
लड़ी जाती हेां लड़ाइयाँ,
फेलाए जा रहे हों
तरहविद्वेष। तरह के–
तीन रंगों के झंडे का सिर
मवादों से भर गया हो,
इसके चक्र के अर्थ
राजनीति के गलियारे में
भटकने लगे हों।
तो क्या मुमकिन है
कि आदमी की आस्था
बरकरार रहे ?

❖❖❖

आज की आवाज़

– नरेन्द्र सिंह

युग को आज जरूरत है।
जो मुर्दे में प्राण फूँक दे, अरि के बढ़ते कदम रोक दे।
अविश्वास भ्रष्टाचारों की देखी सबने सूरत है। युग को...
निर्विकार का द्वार मिला दे, राम राज्य भूतल पर ला दे।
जोकि प्रदूषण विष पी जाए वह शिव कहाँ ध्यान रत है। युग को...
कर्मकाण्ड तक धर्म रह गया, वोट चक्र में राज्य फँस गया।
चोरी चालाकी से मानव बनता आज अरबपति है। युग को...
कहाँ ज्ञान का शेर सो रहा, लूटतन्त्र से देश रो रहा।
अर्थ तन्त्र की रीढ़ अन्न दाता ही आज प्रताड़ित है। युग को...
सम्भवामि युग–युग में गाया, पर न झाँकने अब तक आया।
पूँछ उठाकर जिसको देखा वह माया की मूरत है। युग को...
युग प्रवाह की राह बदल दे जो पीड़ित की आह मसल दे।
युगनायक भूतल नेता बैठा आज कहाँ चुप है। युग को...

आवाहन

कितना और सहोगे तुम।
बीत गये दो सहस शरद तुम जलते आए लपटों में।
सत्य अहिंसा के साधक तुम छले गये हो कपटों में।।
गढ़ गढ़ कर इतिहास आसुरी बना वारूणी पिलवाया।
इस्लामिक आतंकवाद ही सारे जग पर क्यों छाया।
पुनः ब्रह्मचारी, योगी, संन्यासी कभी बनोगे तुम। कितना और....
भूल गये संसद की घटना, मुम्बई में अपमान हुआ।
कुम्भकर्ण को नींद न टूटी और न खुद का भान हुआ।।
बोट तंत्र में नोट गिन रहे भारत के जो नेता हैं।
ओ मतदाता, क्यों न जागता, कुर्सी तू ही देता है।।
फिर दहली मुम्बई अभी आगे भी कुछ देखोगे तुम। कितना और....

❖❖❖

संपर्क : इन्द्रप्रस्थ कालोनी
लखनऊ रोड़ हरदोई

वो बता कैसे मिटें

– शिवकुमार बिलग्रामी

दाग़ जो अब तक अयाँ हैं वो बता कैसे मिटें
फासले जो दरमियाँ हैं वो बता कैसे मिटें

एक मुद्दत से दिलों में दर्द की हैं बस्तियाँ
दर्द की जो बस्तियाँ हैं वो बता कैसे मिटें

रात भर सोया नहीं मैं बस इसी एक फिक्र में
अनसुनी कुछ सिसकियाँ हैं वो बता कैसे मिटें

आग से उठते धुएँ को तू मिटा देगा मगर
आग से दीगर धुआँ हैं वो बता कैसे मिटें

किस तरह रिश्तों में आईं तल्खियाँ, ये फिर कभी
बेसबब जो तल्खियाँ हैं वो बता कैसे मिटें

कल शमां जलती रही है देर तक इस सोच में
कुछ अँधेरे बेजुबाँ हैं वो बता कैसे मिटें

जो पुराने थे गुनह वो धो दिये तूने मगर
खून के ताज़ा निशाँ हैं वो बता कैसे मिटें

मैं ग़मों के बादलों की बात अब करता नहीं
खौफ़ के जो आस्माँ हैं वो बता कैसे मिटें

❖❖❖

सृजन स्मरण

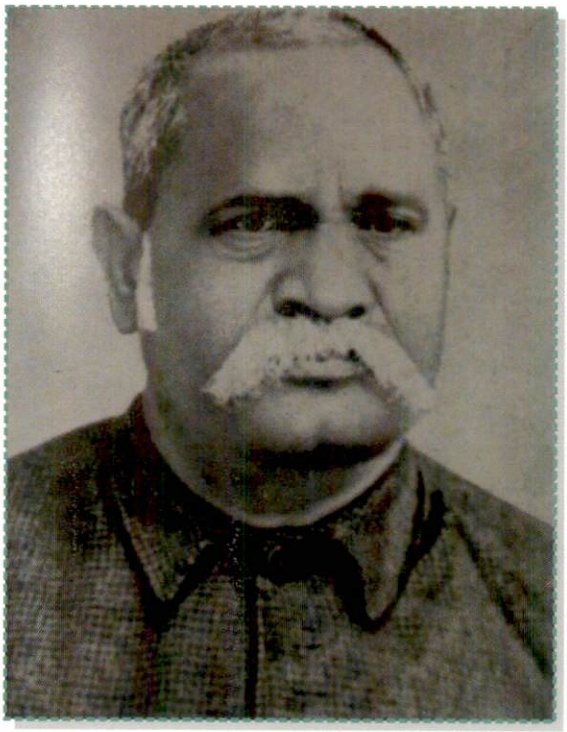

नाथूराम शर्मा 'शंकर'

(जन्म : अप्रैल, 1859; निधन : 21 अगस्त, 1932)

बारी अब अन्त काल की आई।
भोग–विलास–भरे विषयों की, करता रहा कमाई,
आज साज सब देने पर भी, टिकता नहीं घड़ी भर भाई।
व्याकुल वनिता ने अँसुओं की, आकर धार बहाई,
पास खड़ा परिवार पुकारे, रोक न सकी सनेह–सगाई।
लगे न ओषधि कविराजों ने, मारक व्याधि बताई,
नेक न चेत रहा चेतन को, बिछुड़ी गैल गमन की पाई।
प्राण–पखेरू तन–पंजर से, भागा कुछ न बसाई,
काल पाय हम सब की होगी, हा 'शंकर' इस भाँति बिदाई।

सृजन स्मरण

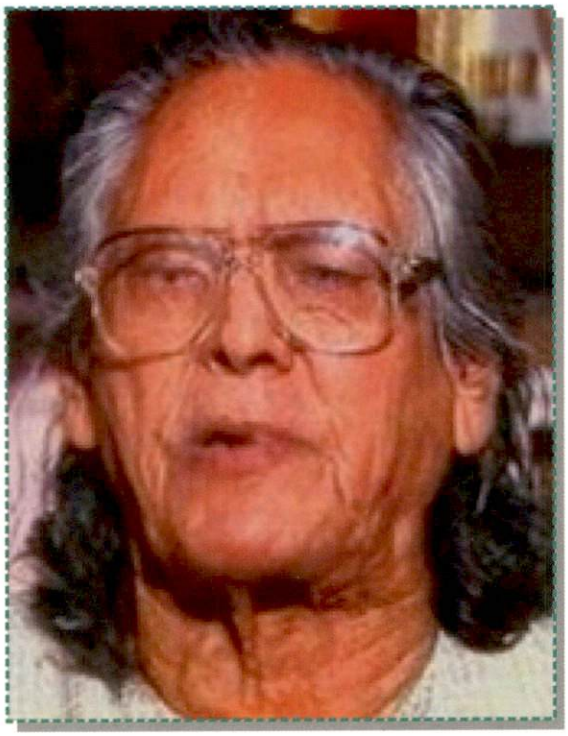

हसरत जयपुरी

(जन्म : 15 अप्रैल, 1922; निधन : 17 सितम्बर, 1999)

ना होंगे अगर हम तो रोते रहोगे
सदा दिल का दामन भिगोते रहोगे
जो तुम पर मिटा हो उसे ना मिटाओ
मोहब्बत में इतना ना हमको सताओ
आवाज़ देके हमें तुम बुलाओ
मोहब्बत में इतना ना हमको सताओ